International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

रमणिका गुप्ता के 'सीता' और 'मौसी' उपन्यास में चित्रित आदिवासी नारी का संघर्ष

कृष्णा देवी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
ई मेल : narendersuhag2016@gmail.com

रमणिका गुप्ता कि इन दोनों उपन्यासों में आदिवासी समाज का चित्रण किया गया है। ''आदिवासियों की संस्कृति काफी हद तक बहुसंख्यक हिंदू समाज की विकृतियों की शिकार हो चुकी थी और यह प्रक्रिया सतत् जारी थी। आदिवासी समाज कभी अपनी आवश्यकताओं के लिए तो कभी उसको जबरन खेतों, खदानों में मजदूर बन कर या बनाकर आ रहा था या लाया जा रहा था। सरकार, सूदखोरों व दिकुओं और बाहरी लोगों द्वारा उनकी जमीनों और जंगलों का उनसे छीना या हड़पा जारी था। आदिवासी स्त्री–देह–वस्तु में परिवर्तित करने की होड़ मची थी।''[1]

वहीं आदिवासी स्त्रियाँ अपनी अस्मिता बचाने के लिए बहुत ही मुश्किलों का सामना कर रही थी। कहीं समाज से तो कहीं व्यक्तिगत तौर पर उनको अपनी नियति मान कर सह रही थी। लेकिन जब आदिवासी समाज अपनी अस्मिता बचाने के लिए लड़ता है तो इस संघर्ष में स्त्रियों की भूमिका निर्णायक होती है। वो पुलिस का सामना करने के लिए सबसे पहले व सबसे आगे खड़ी होती है।

रमणिका गुप्ता ने अपने उपन्यासों का विषय उन महिलाओं को केन्द्र में रखकर चुना, जो मध्यमवर्गीय स्त्रियों की तरह अपने लिए 'स्पेस' हासिल करने एवं आत्मनिर्भर होने की जद्दोजहद से कहीं अलग प्रकृति के दामन से जिंदगी के दाने चुनती दिखाई पड़ती है।

'सीता और मौसी' उपन्यास की नायिकाएँ सामाजिक धरातल पर एक चेतन–स्वरूप में अपनी पहचान देती स्त्रियाँ है, जो सामाजिक समस्याओं में खुद को भागीदार बना कर नायिकाएँ बनकर सामने आती हैं। इन दोनों उपन्यासों चाहे सीता हो अथवा मौसी दोनों श्रमजीवी स्त्रियों के युद्धरत प्रवृति को प्रदर्शित करने का लोहमहर्षक आख्यान है। ''दोनों उपन्यास आदिवासी समाज के दो पहलू हैं – राजेन्द्र यादव जी के शब्दों में दोनों एक व्यक्तित्व के दो पक्ष हैं या पूरक हैं।''[2] ''इन दोनों उपन्यासों की नायिकाएँ – 'सीता' और 'मौसी' अभी मौजूद हैं – एक खदान में, एक गाँव में।''[3]

उपन्यास की नायिका 'मौसी' आदिवासी समाज में स्त्री वर्ग की दुःसह वेदना और करूण चीत्कार का मानवीय चित्रण है। रमणिका जी ने 'मौसी' उपन्यास के माध्यम से हमारा ध्यान दलित स्त्री

के रूदन की ओर आकृष्ट करने का प्रयास किया है उपन्यास की नायिका 'मौसी' प्रेमचंद की 'बूढ़ी काकी' की तरह संतानहीन होने की वजह से अपने रिश्तेदारों से छली जाती है। लेकिन लेखिका ने 'मौसी' को 'बूढ़ी काकी' की तरह परजीवी व आश्रित नहीं बनाया, वह तो खुद्दार औरत है जो न तो संघर्ष छोड़ती है न अपने भीतर की जिजीविषा को खत्म होने देती है। हर जगह छली जाने के बाद भी वह मौत का रास्ता नहीं चुनती बल्कि खुद को आत्मनिर्भर बनाकर जीने की राह चुनती है।

''तो चल, तू और दोनों मजूरी करके, खटके खायब! न तू ठाकुर – न हम मुंडा। न तू बड़ जात – न हम छोट जात। दोनों मजूर। हम तोर कमाई पर न रहब। हम अपनेई कमायब। मंजूर हय तो बोला।''[4] इन पंक्तियों से मौसी में जीवन जीने के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण पाया जाता है। साथ में वह स्वावलम्बी है जो खुद को दूसरों पर आश्रित नहीं रखना चाहती। जीवन में छल–कपट ने उसे व्यवहारिक एवं दूरदर्शी बना दिया। सलीम 'ट्रक ड्राइवर' से अथाह प्रेम किया, लेकिन जब उसे उसके मौलवी बाप के गले जबरदस्ती बाँध दिया जाता है तो वह कायरों की भाँति देखता रहता है। यहाँ पुरुष को पलायनवादी दिखाया गया है क्योंकि वह उसे अपने प्रेम का सच बताकर उसको अपना सकता था। वहीं दूसरी तरफ मौसी की संतान ना होने पर वह अपने भतीजे को पुत्र की तरह पालती है तथा उसे अति स्नेह व प्यार देती है। जब वह उस पर हाथ उठाता है तो उसका हृदय चीत्कार कर उठता है – निम्न पंक्तियों में एक स्त्री की वह पीड़ा झलकती है, जो उसके कलेजे में खंजर घौंपे हुए हैं। ''मरदों का क्या विश्वास ? सलीम डर गया – भाग गया, मौलवी जबरन गले में मढ़ दिया – मर गया, भगवान बाबू और उसका अपना भी स्वार्थ था। इसलिए दोनों मिले थे। उनका स्वार्थ सध गया, तो छोड़कर चल दिया था अकेले।''[5]

आदिवासी समाज में भी 'स्त्री' पुरुषों के लिए एक वस्तु है। उसके स्वतंत्र सोच की, वजूद की, इच्छाओं की कोई अहमियत नहीं, जब तक उस पर पुरुष–स्त्रीकृति की मुहर न लग जाए। इस उपन्यास के माध्यम से उन सारी मौसी सरीखी स्त्रियों की जीवतता को सलाम करती नजर आती है, जो जीवन से पलायन नहीं करती, कठिनाइयों से भी नहीं घबराती हैं। हाथ में फावड़ा–कुदाल उठाकर उनका सामना करती हैं।

आदिवासी औरतें न जाने कितने सामाजिक बंधनों को झेलते हुए जीवन में जिजीविषा के लिए आखिर दम तक संघर्ष करती रहती है। कई बार तो माँ–बाप भी 12 वर्ष की बेटी को 60–70 वर्ष के व्यक्ति को विवाह के लिए बेच देते हैं। इस सामाजिक त्रासदी को भी लेखिका ने 'मौसी' उपन्यास के माध्यम से उठाया है। इस उपन्यास की नायिका मौसी को भी मजबूरन अपने प्रेमी सलीम के बूढ़े अब्बा

से विवाह करना पड़ता है। वह आर्थिक मजोरी के कारण मानसिक–शारीरिक त्रासदी झेलती है व उससे बचती रहती है आखिर एक दिन वह शिकार बन ही जाती है – ''अपने कमजोर सूखे थरथराते हाथों से अब्बा ने उसकी सख्त ठंडी देह को छुआ। जैसे असंख्य चीटियाँ रेंग गई उसकी देह पर। अब्बा के हाथ जैसे–जैसे उसकी देह पर दौड़ते, वह उतना ही सिकुड़ती जाती। हाथ तेजी से दौड़ने लगे थे अब वह समझ रही थी कि उसके जिबह होने की घड़ी करीब आ रही है। बकरी आखिरी समय में मिमियाना बंद कर कातर नजरों से कसाई को देखती है।''[6]

मौसी के माध्यम से एक स्त्री पीड़ा व संघर्ष का चित्रण सहज रूप में किया गया है। मौसी के माध्यम से लेखिका ने लाखों–करोड़ों उन बालिकाओं–स्त्रियों को ममहित कर देने वाली यातना को, वेदना को हमें महसूस करने पर विवश करती है।

'सीता' और 'मौसी' उपन्यास में काफी समानताएँ होते हुए भी उनमें मूलभूत अंतर यही है कि मौसी 'समष्टि' को व्यष्टि' में समाकर संतोष पा लेती है। वहीं सीता व्यक्तिगत रूप की अधूरी पूर्णता की वजह से 'व्यष्टि' को 'समष्टि' में खो कर पूरे समाज, पूरे मजदूर समुदाय के हक के लिए कोयला खदानों से जुड़े आंदोलन में ट्रेड यूनियन की हैसियत से जुड़ जाती है। ''उसे विश्वास है कि एक दिन उसका ही नहीं उन सभी का वक्त आएगा जो अभी अलग–अलग जाने कहाँ–कहाँ, किस–किस से लड़ रही है और बनती जा रही हैं एक जमातें, एक कतार, एक पाँत, एक शृंखला, एक कड़ी। वह अपने को उन लड़ने वालों की कतार में सबसे आगे खड़ी देखत है।''[7]

रमणिका गुप्ता के उपन्यास की 'सीता' पौराणिक चरित्र से प्रेरित 'सीता' नहीं है। त्याग तपस्या की देवी, पतिव्रता नारी जो मुश्किल घड़ी में पति का साथ देती है और बदले में उसे अग्निपरीक्षा देनी पड़ती है तथा साथ ही गर्भावस्था में राज्य से निष्कासित किया जाता है। वह इन परिस्थितियों को चुपचाप सहती है तथा जब दुःख व वेदना से भर जाती है तो धरती में समां कर अपने जीवन की आहुति दे डालती है। लेकिन रमणिका गुप्ता की 'सीता' उससे बिल्कुल भिन्न है। वह तो अपने साथ अन्याय, अत्याचार करने वालों को ही जमीन में जिन्दा दफन करने का हौंसला रखती है।

उपन्यास की नायिका 'सीता' कोई गुंगी–बहरी गाय नहीं है, वह खुद को पुरुषों के बराबर ही मनुष्य समझने वाली नारी अधिकारों के प्रति सचेत महिला है। 'सीता' का पौराणिक चरित्र दूर–दूर तक उसका आदर्श नहीं है। सीता आधुनिक स्त्री सोच वाली अन्याय, अत्याचार करने वालों के खिलाफ विद्रोह की भावना रखती है। ''साले हमर के रामायण पढ़ाये हैं। उसरे (यासीन) को राम कहे है जो दूसर औरत कर लेले। राम जी तो दूसर ब्याह नाय करले, पर जाए दे – हम उ सीता जी नाय है जे

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

वन मैं चल जाए। हम तो एही साले के वन मैं भेज देब।''[8] सीता के माध्यम से लेखिका ने कोयला खदानों में मजदूर, खासकर आदिवासी महिला–मजदूरों के शोषण, दोहन और संघर्षों का यथार्थपरक चित्रण किया है।

नायिका 'सीता' आदिवासी समाज में सामंती पुरुषवादी सोच के प्रभाव के कारण स्वार्थलिप्सा से ऊब जाती है, उसे दूर करने के लिए वह कमर कसकर तैयार दिखती है। सामंतवादी प्रवृति के कारण खोए हुए आदिवासी मूल्यों को भी वह वापस पाना चाहती है। ''लहरे लौटते हुए अपने साथ तट पर फैली जीर्ण–शीर्ण मानसिकताओं के बहुली कणों को बहाकर ले जा रही हैं, समुद्र के गर्त में दफनाने के लिए। वह इन्तजार में कि आगे दिन जो सूरज निकले जो हवा बहे।. . . वह उसके हिस्से मे भी आए, जिससे वह वंचित रहती है, सभ्यता के आने के बाद।''[9]

सीता सर्वस्व–समर्पण करने वाली नारी है, जो अपने प्रेमी द्वारा छली जाती है तो वह रौद्र रूप धारण कर यासीन को कभी माफ नहीं करती, न ही अपने जीवन को घुट–घुटकर खत्म करती है। वह जीती है, संघर्ष करती है पहले अपने बच्चों की खातिर, फिर समस्त मजदूर समाज के लिए।

सीता ने अपने साथ काम करने वाली कई स्त्रियों को शोषित होते देखा था। सीता ने इस शोषण का प्रतिकार किया। सीता दलित समुदाय की उस स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है, जो न तो शोषण का शिकार होती है और न ही अत्याचार को चुपचाप सहन कर आँसु बहाती है। वह विरोध करती है तथा शोषकों से भिड़ने की हिम्मत रखती है। ''भागीरथ का गट्टा पकड़ लिया – ठहर साले रखनी वाली दोगले। घर जोरू रखते हो, कोलरी में रखनी। दोनों हाथ में लड्डू। सब रखनियों की औलाद को गछवा कर जायदाद में हिस्सा न दिलवाय दिया तो हमर नाम सीता नाय।''[10]

सीता स्वयं एक स्त्री है इसलिए वह दूसरी स्त्री के दर्द को आसानी से समझ लेती है तथा वह आदिवासी मजदूर महिलाओं के हितों की मजबूत पैरवी करती दिखाई देती है। सीता मजदूरों के अधिकारों के लिए जान जोखिम में डालकर संघर्ष करती है। वह 'यूनियन' की सदस्य बनकर अपने ही जैसी अन्य 'सीताओं' के हक के लिए आवाज उठाती है, संघर्ष करती है। सीता को यकीन है कि उसकी लड़ाई, उसका संघर्ष एक दिन जरूर सार्थक होगा। ये सारा वंचित समुदाय, दलित वर्ग, शोषित स्त्रियाँ जिंदगी को अपनी खुशी के हिसाब से जी पाएंगे। ''उसे यह विश्वास है कि एक दिन उनका ही नहीं, उन सभी का आएगा, तो अभी अलग–अलग, अकेले जाने कहाँ–कहाँ, किस–किससे कैसे लड़ रही है और बनती जा रही है एक जमातें, एक कतार, एक पाव, एक शृंखला, एक कड़ी।''[11]

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

सीता आशावादी है वह आम स्त्रियों की भाँति अपने दुख, शोषण व यातनाओं को भाग्य का खेल, विधि का विधान मानकर चुप नहीं बैठती वह लड़ती है, जुमती है, संघर्ष करती है, उसे यकीन है कि ईश्वर भी एक दिन उसकी सुनेगा। ''देवता हमर खिलाफ कैसे जाइब ? आखिर देवता भी तो हमारे विश्वास पर टिकलै हैं।''[12]

समाज चाहे कोई भी हो उसका स्वरूप तो पितृसत्तात्मक अवश्य होता है। समाज में हर जगह स्त्री एक कठपुतली है। प्रेम संबंध या फिर दाम्पत्य संबंध उसकी मर्जी का कोई महत्त्व नहीं है। वैसे तो मुस्लिम समाज में निकाह के वक्त स्त्रियों की रजामंदी पूछना जरूरी होता है, वह भी मात्र एक रस्त बनकर रह गया है। सीता और मौसी दोनों उपन्यास की नायिकाएँ दाम्पत्य–जीवन के दृश्य और अदृश्य धागों से बँधती हैं, कटी–पतंग की तरह रिश्ते से विलग कर दी जाती है, कभी संबंधों की जंजीर से लहूलुहान भी हो जाती हैं। लेकिन हर पीड़ा, जलन, तड़प, आँसू नारी के हिस्से ही आता हैं पुरुष समाज पलायन कर सदा स्वछंद एवं अनुत्तरदायी ही बना रहता है।

लेखिका ने 'सीता' और 'मौसी' जैसे यथार्थपरक पात्रों को उन्होंने उपन्यास की नायिकाएँ बनाकर उन दलित स्त्रियों की जीवटता को सलाम किया है जो परिस्थितियों से हार न मानकर, उनका सामना करती हैं। रोहिणी अग्रवाल के शब्दों में – ''सीता' और 'मौसी' दोनों ही गद्यकृतियों में रमाका जी की स्त्रियाँ अपनी दुर्दशा एवं करूण स्थिति से टूटती नहीं, अपने भीतर शक्ति का संधान कर जीवन एवं परिस्थितियों का पुनर्सजन करती है। इस प्रक्रिया में 'भोक्ता' की निष्क्रिय और 'उत्पादन' की दोयम स्थिति का अतिक्रमण कर वे कर्त्ता की नियंत्रक सक्रियता तथा रचियता की सर्जक भूमिका में अपने सबल–सकारात्मक नेतृत्व की छाँव में दीन–दुखियों को आश्रितों को ले लेती है।''

'सीता' और 'मौसी' जब तक अपने जीवन के लिए सहारा मर्दों में, पुरुष मित्रों में ढूंढ़ती हैं, तब तक वह छली जाती है, धोखा खाती है, अकेली रह जाती है। लेकिन वह पूरी तरह से टूटकर–बिखकर जीवन से पलायन नहीं करती, बल्कि जीवन से ही जीने की वजह छीन लेती हैं।

संदर्भ सूची

1 रमणिका गुप्ता, 'सीता' और मौसी, पृ॰ 1
2 वही, पृ॰ 3
3 वही, पृ॰ 3
4 रमणिका गुप्ता, मौसी, पृ॰ 174
5 वही, पृ॰ 153

6 वही, पृ॰ 119

7 रमणिका गुप्ता, सीता, पृ॰ 92

8 वही, पृ॰ 59

9 वही, पृ॰ 92

10 वही, पृ॰ 61

11 वही, पृ॰ 92

12 वही, पृ॰ 90